पर्यावरण परिवर्तन का कृषि विकास पर प्रभाव एवं उसका समाधान

रेशू चौधरी एवं आर0एस0 सेंगर

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ
ईमेल–reshuchaudhary55@gmail.com, sengar65@gmail.com

सारांश

अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर विकसित और विकासशील देशों के बीच वाद–विवाद का विषय बनकर रह गई जलवायु परिवर्तन की चुनौती भले ही रोज़मर्रा की आजीविका के संघर्ष एवं व्यस्त दिनचर्या में लीन लोगों के लिए महज ख़बर या अकादमिक विषय सामग्री हो। लेकिन सच्चाई यह है कि हवा, पानी, खेती, भोजन, स्वास्थ्य, आजीविका एवं आवास आदि सभी पर प्रतिकूल असर डालने वाली इस समस्या से देर–सबेर, कम–ज्यादा हम सभी का जीवन प्रभावित होता है, चाहे यह समुद्री जलस्तर बढ़ने से प्रभावित होते तटीय या द्वीपीय क्षेत्रों के लोग हों या असामान्य मानसून अथवा जल संकट से त्रस्त किसान। विनाशकारी समुद्री तूफान का कहर झेलते तटवासी हों अथवा सूखे एवं बाढ़ की विकट स्थितियों से त्रस्त लोग। असामान्य मौसम जनित अजीबो–गरीब बीमारियों से जूझते लोग हों या विनाशकारी बाढ़ से अपना आवास एवं सब कुछ गवां बैठे तथा दूसरे क्षेत्रों को पलायन करते लोग। दरअसल ये तमाम लोग जलवायु परिवर्तन की मार झेल रहे हैं। वायुमंडल के तापमान और आद्रर्ता में हो रहे लगातार परिवर्तन से फसलों पर आक्रमण करने वाले रोगाणुओं तथा कीटों के स्वभाव और संख्या में परिवर्तन की संभावना बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन के दौरान नए–नए तरह के पैथोटाइप तथा बायोटाइपों के विकास की संभावना बढ़ रही है। वायुमंडल की गर्माहट और नमी में वृद्धि से इनकी क्रियाशीलता की अवधि में भी वृद्धि हो सकती है जिससे फसलों पर होने वाले आक्रमण में गहनता आ सकती है और नुकसान भी ज्यादा हो सकता है। पर्यावरण में ऋतु परिवर्तन के कारण कभी ठंडक तथा कभी गर्मी पड़ने से कीटों तथा रोगों को फैलाने वाले सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता में भारी कमी हो जाती है जिससे इनकी संख्या मे कमी होती रहती है परंतु तापमान और आर्द्रता में वृद्धि के कारण इनकी क्रियाशीलता बरकरार रहती है और इनकी संख्या में वृद्धि होते रहने की शंका है।

जलवायु परिवर्तन के कृषि पर तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभावों के अध्ययन की ज़रूरत है। कृषि वैज्ञानिकों की यहां कमी नहीं है, लेकिन कृषि वैज्ञानिक भी अभी जलवायु परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए इस दिशा में कई शोध शुरू हुए हैं लेकिन अभी उचित परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं। हमें इस क्षेत्र में तत्काल दो काम करने चाहिए। एक यह कि जलवायु परिवर्तन से कृषि चक्र पर क्या फ़र्क पड़ रहा है यह जानना तथा दूसरे क्या इस परिवर्तन की भरपाई कुछ वैकल्पिक फसलें उगाकर पूरी की जा सकती हैं? साथ ही हमें ऐसी किस्म की फसलें विकसित करनी चाहिए जो जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने में सक्षम हो, मसलन फसलों की ऐसी किस्मों का ईजाद जो ज्यादा गरमी, कम या ज्यादा बारिश सहन करने में सक्षम हो तभी अन्नदाता का भला हो सकेगा।

Abstract

The challenge of climate change may be a subject of mere academic interest in the daily life, people busy in earning their livelihood and this has become a matter of discussion at international forum of developed and under developed countries. But fact is that we all are affected be climate change which influences air, water, farming, food items, health and liveliheed of human beings, climate change adversely affects the lives of people living in costal areas, farmers engaged in agriculture by drought or flood conditions. The changing climate also causes several types

of diseases forcing the people to migrate to other areas enjoying normal climate. Globally changing climate results in increased atmospheric warming and humidity favouring the growth of pathogenic organisms. There is urgent need of persuing the advanced studies on burning problems of climate change in our country. Although there is sufficient number of agricultural scientists and others but only limited studies on the effect of infavourable climate have been conducted in different universities of India.

In our area we should instantly do two thing firstly knowing that what is happening due to change climatical condition on the crop rotation. Secondly can these changes fulfilled by taking some basic decisions. We should also develop some technique to fight with change in climatical conditions, mean we should develop new varieties for resistant of heat stress, drought stress, water loging, only then farmers will be helped.

प्रस्तावना

देश में लगातार बढ़ती जनसंख्या व औद्योगीकरण भौतिक सुविधाओं की पूर्ति व यातायात संसाधन के बढ़ने से वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों की सांद्रता निरंतर बढ़ रही है और इसी कारण से वनों एवं कृषि का क्षेत्रफल भी लगातार घट रहा है। जिसके चलते प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी निःसंदेह दोगुना हो गया है। ऐसा नहीं है कि कृषि क्रियाओं का पर्यावरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता होता है। कम उर्वरा शक्ति वाली भूमि में अधिक खाद का उपयोग या एक फसल प्रणाली का लगातार उपयोग करने से ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता बढ़ती है। ग्रीन हाउस गैसों में मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, ओजोन व कार्बन डाई आक्साइड गैसों में से भी कार्बन डाई ऑक्साइड ही जलवायु परिवर्तन या भूमण्डलीय तपन के लिये उत्तरदायी है। जबकि वर्ष 1000 से 1750 ईसवीं में CO_2 की सांद्रता 280 पी.पी.एम. थी जो आज बढ़कर 383 पी.पी.एम. हो गई है। मानव ने अपने अविवकेपूर्ण क्रियाकिलापों से धरती का अन्धाधुन्ध दोहन करके सौरमण्डल के इस एक मात्र हरे–भरे ग्रह (पृथ्वी) को गहरे संकट में फंसा दिया है। स्वाभाविक रूप से अब हमारे अस्तित्व के साथ ही जैव सम्पदा की विविधता पर खतरा मंडरा रहा है। इस खतरे को हम भांप तो रहे हैं, किन्तु कुछ कर पाने की स्थिति में शायद हम नहीं हैं। जलवायु परिवर्तन के अन्तर सरकारी पैनल के अनुसार सन् 2010 में CO_2 की सांद्रता 397 से 416 पी.पी.एम. तक हो सकती है और सन् 2070 में 605 से 755 पी.पी.एम. तक बढ़ सकती है।

पिछली शताब्दी के दौरान वायु के सतही तापमान में 0.74 डिग्री सेल्सियस की महत्वपूर्ण बढ़ोतरी देखी गई और जलवायु परिवर्तन के अन्तर सरकारी पैनल ने अगले दो दशकों में 0.2 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक की बढ़ोतरी का अनुमान लगाया है। यदि सभी ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन बंद कर दे तो भी भविष्य में तापमान करीब 0.1 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक बढ़ सकता है। जलवायु परिवर्तन के अन्तर सरकारी पैनल 2007 के अनुसार इस शताब्दी के अन्त तक तापमान में 2.0 से 4.5 डिग्री सेल्सियस तक वृद्धि होने की संभावना व्यक्त की जा रही है।

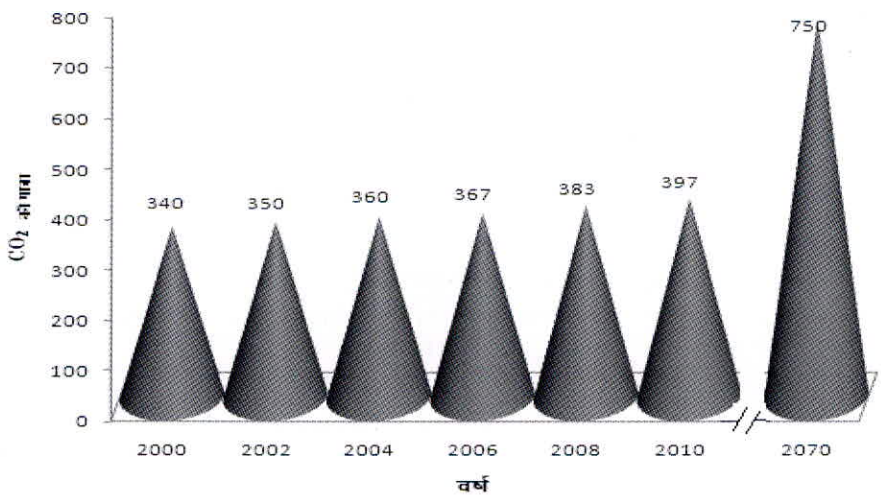

धरती की प्राकृतिक प्रणाली में परिवर्तन के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं और मुख्य संकट उत्पन्न हुआ है धरती के पारे में उतार–चढ़ाव एवं जलवायु परिवर्तन के कारण यानि धरती के गरमाने से। जलवायु परिवर्तन से मध्य और दक्षिण एशिया में 2050 तक खाद्यान्न एवं सब्जियों के उत्पादन में 50 फीसदी तक गिरावट आने के संकेत हैं और यह सब होगा सिंचाई जल में कमी के कारण। आई0पी0सी0सी0 के ताजा अनुमान के आधार पर केवल दक्षिण एशिया उप महाद्वीप में नदियों में कम जल प्रवाह के कारण लगभग 50 करोड़ लोग प्रभावित होंगे। आमतौर पर पर्यावरण परिवर्तन का तात्पर्य उन सभी बाह्य परिस्थितियों पर पड़ने वाले अवांछित बदलाव से है जिसका प्रभाव उन वातावरण में रहने वाले जीवधारियों पर पड़ता है। पर्यावरण परिवर्तन प्राकृतिक या मानवजन्य कारणों से उत्पन्न होता है। मानवजन्य कारण भी जानबूझकर अथवा अनजाने में उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु जलवायु परिवर्तन के विभिन्न कारण वर्तमान समय में विश्व के वैज्ञानिक समुदाय के लिए गंभीर चिंता का विषय है। विष्व मौसम विज्ञान संगठन, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, नासा, आईसीएसयू, सीएसईपीए और अन्य अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संगठनों व एजेंसियों द्वारा कराये गये वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण से इस परिवर्तन के दो प्रमुख पक्ष उजागर हुए हैं जो क्रमशः वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की बढ़ोत्तरी से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि तथा वायुमण्डल के स्ट्रैटरेस्फीयर में ओजोन परत के क्षीण पड़ने से परा–बैंगनी किरणों के हानिकारक विकिरण में अत्यधिक वृद्धि है।

पर्यावरण परिवर्तन का कृषि विकास पर प्रभाव

नदियों की तलहटी में पेटा काश्त के रूप में कद्दूवर्गीय एवं अन्य सब्जियों का विपुल उत्पादन होता हैं और यही कारण है कि मई–जून की भीषण गर्मी में हमें तरबूज जैसा शीतल फल खाने को मिलता है जो हमारी प्यास को शांत करता है। किन्तु कल्पना उस स्थिति की कीजिए जब नदियों में जल प्रवाह कम हो जायेगा तो नदियों की तलहटी में होने वाले उत्पादन से हम हाथ धौ बैठेंगे। इसकी कल्पना मात्र से ही सिहरन उत्पन्न होती है। यदि हमने आज इस बारे में गंभीरता से नहीं सोचा तो वर्ष 2050 की भयावह त्रासदी के लिए तैयार रहे। यह एक ऐसी आपदा होगी, जिसका प्रबन्धन कर पाने में हम पूर्णतया असफल रहेंगे। वर्षा की अनिश्चतता के कारण हमारी वन सम्पदा भी समाप्त होने के कगार पर होगी। जलवायु परिवर्तन के संकेत अभी से हमें मिलने लगे हैं जिसमें रेगिस्तानी क्षेत्रों में बाढ़, मुम्बई में बादलों का फटना, पर्वतीय क्षेत्रों में बादल फटने से विनाशक तूफान, सुनामी, भूकम्पन जैसी स्थितियां हमारे सामने आ चुकी हैं। गरमाती हुई धरती, पिघलते हुए ग्लेशियर्स एवं ओजोन शिथिलन एक महाविनाश की ओर संकेत कर रहे हैं। हमने उनसे कोई सबक नहीं लिया और न ही कभी गम्भीरता से यह सोचा है कि यह सब क्यो हो रहा है।

यह जल का ही करिश्मा है कि शहरों में लोग गृह वाटिकाओं, छत/टेरेस पर गमलों और लकड़ी के खोकों में साग सब्जियां व फुलवारी उगा रहे हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में घर के पिछवाड़े में यह क्रियाकलाप अपनाकर हम सघन प्रयास कर अच्छा पोषण पाने की जुगत कर रहे हैं, किन्तु जब जल ही सीमित हो जायेगा तो हम क्या कर पाएंगे। इस बारे में सभी स्तरों पर गम्भीर चिन्तन एवं चर्चा की आवश्यकता है, एक ठोस कार्यक्रम को ईमानदारी से लागू करने का संकल्प लेना होगा ताकि आने वाली आपदा से बचा जा सके। जहाँ तक कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ने का प्रश्न है वैज्ञानिकों का मत है कि वायुमण्डल में इसकी मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है जिसका प्रमुख कारण विभिन्न प्रकार के ईंधन जलाए जाना है। वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की बढ़ी असाधारण मात्रा से सूर्य की गर्मी का एक हिस्सा पृथ्वी से परिवर्तित होकर बाहर नहीं निकल पाता क्योंकि ये आवरण के रूप में उनके लिए अवरोधक का कार्य करता है। जिसके फलस्वरूप एक ऐसी प्रक्रिया जिसे शग्रीन हाउस इफेक्टश कहते हैं, प्रारंभ हो जाती है। हालांकि इस गैस के अलावा कुछ अन्य गैसे भी इस प्रक्रिया को उत्पन्न करती है। लेकिन इस गैसों का संयुक्त प्रभाव कार्बन डाई ऑक्साइड से काफी कम अथवा लगभग इसके बराबर होता है। यदि वर्तमान दर से ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन इसी प्रकार जारी रहा तो ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ष 2050 तक पृथ्वी का तापमान 1.5 से 3.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जायेगा। जब ओजोन परत के क्षरण का प्रश्न है, वैज्ञानिकों का मत है कि मनवजन्य कारणों से वायुमण्डल में अधिक मात्रा में क्लोरोफ्लोरो कार्बन जैसे फ्रैओन गैस तथा कुछ अन्य गैसों के अत्यधिक मात्रा में उत्सर्जन से इस परत का बड़ी तेजी से क्षरण हो रहा है। इस फ्रैओन गैस की पहचान ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाली प्रमुख गैस के रूप में किया गया है तथा जिसका उपयोग वर्तमान में वातानुकूलन और प्रशीतन में व्यापक रूप से किया जा रहा है। ओजोन परत सूर्य से उत्पन्न पराबैगनी विकिरणों को अवशोषित करती है परन्तु इसके क्षीण पड़ जाने से पृथ्वी पर पराबैगनी विकिरण की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। उपग्रहों से प्राप्त प्रारंभिक आंकड़ों से पता चलता है कि वर्ष 1998 में ओजोन परत में छेद 2.73 करोड़ वर्ग किलोमीटर के आकार में पहुंच चुका था जो वर्ष 1996 में लगभग 1.0 करोड़ वर्ग किलोमीटर आकार तक का आंका गया था। पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि से विभिन्न प्रकार के खतरे जैसे भयंकर तूफान, पहाड़ों पर ग्लेशियर का पिघलना इत्यादि उत्पन्न हो सकते हैं तथा उनका प्रभाव विनाशकारी होता है क्योंकि समुद्र की सतह ऊपर उठ सकती है और तूफानों की प्रचंडता और भी बढ़ सकती है। ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण

वर्षा, हिमपात और जमीन में नमी की मात्रा के संतुलन पर भी असर पड़ता है। इसका एक पक्ष यह भी है कि इससे कुछ क्षेत्रों को तो अवश्य लाभ होता है लेकिन अनुपातन अन्य क्षेत्रों में जलवायु एवं विशेष रूप से कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ज्ञात है कि गर्म मौसम और कार्बन डाई ऑक्साइड की अधिकता में कुछ पेड़–पौधे तेजी से विकसित होते हैं एवं पानी का भी अधिक से अधिक कारगार उपयोग करते हैं परन्तु इस संदर्भ में जो भी निष्कर्ष निकाले गये है वे सभी प्रयोगशालाओं की आदर्श स्थितियों में किये गये परीक्षणों पर ही आधारित है। इसके अतिरिक्त इन अनुमानों में खराब जलवायु सूखे एवं लू के दुष्प्रभावों, कीड़े–मकोड़ों के प्रकोपों एवं फसलों के पौष्टिक गुणों में आने वाली विभिन्नताओं की अनदेखी की गयी है।

सारणीः– वर्षा एवं वनों का वितरण

क्र.सं.	वर्षा (से.मी.)	वन (Forest)
1.	50 से कम	अर्द्ध मरूस्थलीय वन (Semi desert forest)
2.	50 – 100	छोटे वृक्ष वाले वन (Small tree forest)
3.	100 – 200	मानसूनी वन (Monsooni forest)
4.	200 – अधिक	सदाबहार वन (Evergreen forest)

सारणीः– भारत में वन क्षेत्र को उसकी सघनता के आधार पर निम्न प्रकार से बाँट सकते हैं।

क्र.सं.	जंगल के प्रकार	क्षेत्रफल	प्रतिशत क्षेत्रफल कुल क्षेत्र की
1.	सघन वन	3,77,358.00	11.48%
2.	खुला वन	2,55,084.00	7.76%
3.	मैंग्रूव	4871.00	0.15%
4.	बिखरे वन क्षेत्र (10% से कम सघनता वाले)	51,896.00	1.58%
कुल		**6,89,189.00**	**20.97%**

सारणीः– भूमि उद्योग के आधार पर भारत के भूमि संसाधन का विवरण

क्र.सं.	प्रकार	क्षेत्रफल (मीट्रिक हेक्टर)
1.	कृषि भूमि	142.00
2.	जंगल क्षेत्र	67.00
3.	बंजर भूमि	55.00
4.	खाली भूमि	25.00
5.	अन्य उपयोग हेतु भूमि	20.00

ग्लोबल वार्मिंग का शाब्दिक अर्थ धरती के तापमान में वृद्धि से है। इसके प्रयोजन से ग्लेशियर पिघल रहे हैं, पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है एवं कहा जा रहा है कि नदियां सूखकर नाला बन जायेंगी तथा समुद्री जल स्तर में वृद्धि के कारण तटवर्ती शहर जलमग्न हो जायेंगे, फलस्वरूप आबादी कहीं अन्य जगह स्थानांतरित करनी पड़ेगी। वायुमण्डल के तापमान में मामूली परिवर्तन से जलवायु में जो बदलाव आयेंगे उनसे परिस्थितिकीय संतुलन में भारी गड़बड़ी उत्पन्न हो सकती है। तापमान वृद्धि से आर्कटिक समुद्र में बर्फ पिघलने से नये सीमा विवाद पैदा हो सकते हैं और अंटार्कटिक के संसाधनों तक पहुंच आसान हो जाने से नये मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं। समुद्र की सतह में अत्यधिक वृद्धि वर्तमान में सबसे गंभीर विषय है जिससे दुनिया के कई तटवर्ती और निचले इलाके जैसे बांग्लादेश और मालद्वीप समुद्र में जलमग्न हो सकते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार बीसवीं सदी का आखिरी दशक सर्वाधिक गर्म दशक तथा वर्ष 1998 सर्वाधिक गर्म वर्ष रहा। ओजोन परत क्षरणद्व ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन एवं पृथ्वी के तीव्रता से बढ़ता तापमान वैज्ञानिक जगत को तो है, परन्तु सामान्य आदमी इसकी गंभीरता का आंकलन नहीं कर पा रहा हैं। पर्यावरण प्रदूषण तथा इन परिस्थितियों से जुड़े मुद्दे विशेष रूप से अमेरिका, यूरोप एवं अन्य विकसित देशों में चर्चा के विषय तो बनते हैं परन्तु भारत जैसे तमाम विकासशील देशों के एजेण्डे पर अभी तक यह गंभीरता से नहीं लिया जा रहा है।

सारणीः– शुद्ध वायु में उपस्थित गैसों का प्रतिशत (Percentage of Gases in Fresh Air)

गैसें (Gases)	आयतन (पी.पी.एम. Parts/million में)
नाइट्रोजन	756,000
ऑक्सीजन	202,900
वाष्प	31,200
आर्गन	9000
कार्बन डाइऑक्साइड	305
नियोन	17.4
हिलीयम	5.0
मीथेन	0.97–1.16
क्रिप्टान	0.97
नाइट्रस ऑक्साइड	0.49
हाइड्रोजन	0.49
जिनॉन	0.08
आर्गेनिक वाष्प	0.02

ओजोन, वैज्ञानिक जगत के लिए नयी नहीं है। यह हमारे वायुमण्डल में आंशिक रूप से विद्यमान है तथा ये वायुमण्डल के दो भागों में पायी जाती है। 10% ओजोन उस भाग में पायी जाती है जिसकी शुरूआत पृथ्वी के धरातल से 8–18 किमी0 ऊपर होते हुए 30 किमी0 तक रहती है और इस भाग को स्ट्रैटोस्फीयर कहते हैं तथा इसी भाग के ओजोन को आमतौर पर ओजोन परत कहा जाता है। शेष ओजोन की 10% वायुमण्डल के निचले भाग में होती है जिसे ट्रोपोस्फीयर कहा जाता है तथा जिसकी रचना वाहनजनित प्रदूषकों से होती है। इन दो भागों में पाई जाने वाले ओजोन अणु रासायनिक तौर पर तो समान होते हैं परन्तु फिर भी मनुष्यों एवं अन्य जीवित प्राणियों पर इनके प्रभाव अलग–2 होते हैं। स्ट्रैटोस्फीयर में मौजूद ओजोन ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जैविक रूप से हानिकारक अल्ट्रवायलेट किरणों को सोख कर, पैराबैगनी किरणें (अल्ट्रवायलेट) की कम मात्रा को पृथ्वी पर पहुंचने देती है। इन किरणों का ओजोन द्वारा अवशोषण ही तापमान को कम करने का उचित माध्यम है। इस प्रकार ओजोन, पृथ्वी वायुमण्डल के तापमान की रचना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ओजोन के इस क्षरण की क्रिया को यदि अलग रख दिया जाये तो सूर्य की मृत्युकर अल्ट्रावायलेट किरणें वायुमण्डल में प्रवेश कर पृथ्वी के जीवधारियों के लिए घातक साबित हो सकती हैं। ओजोन क्षरण के कुछ प्रतिकूल प्रभाव जैसे त्वचा सम्बन्धी बीमारियों, मोतियाबिन्द, प्रतिरोधक क्षमता (इम्यूनिटी) में कमी, प्लास्टिक पर कुप्रभाव, फसलों को नुकसान, मानव खाद्य पदार्थों में कमी तथा समुद्र के तल पर उपजे फाइटो प्लैक्ट्रान को हानि जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण खाद्य श्रृंखला में असंतुलन इत्यादि प्रमुख है।

वायुमंडल की विभिन्न परतें

हाइड्रोजन	0.5 पी.पी.एम.
नाइट्रस ऑक्साइड	0.25 पी.पी.एम.
कार्बन मोनोऑक्साइड	0.1 पी.पी.एम.
टोजोन	0.02 पी.पी.एम.
सल्फर डाइऑक्साइड	0.001 पी.पी.एम.
नाइट्रोजन डाइऑक्साइड	0.001 पी.पी.एम.

वायुमंडल में विभिन्न गैसों की सांद्रता

गैसें	सांद्रता
नाइट्रोजन	78.09%
ऑक्सीजन	20.94%
आर्गन	0.93%
कार्बन डाइऑक्साइड	0.032%
नियान	18.0 पी.पी.एम.
हीलियम	5.2 पी.पी.एम.
मीथेन	1.3 पी.पी.एम.
क्रिप्टान	1.0 पी.पी.एम.

मानव शरीर को काफी कम मात्रा में अल्ट्रावायलेट–बी भी आवश्यक होता है क्योंकि विटामिन–डी के संश्लेषण में यह एक उत्प्रेरक की भांति कार्य करता है परन्तु अधिकता की स्थिति में ये खतरनाक होती है। लम्बे अवधि तक अल्ट्रावायलेट किरणों के अवशोषण से त्वचा में कैंसर जैसी बीमारियां हो जाती है। जिन व्यक्ति के त्वचा का रंग साफ होता है, उनमें प्रभाव पड़ता है। ज्यादा देर तक इनके सम्पर्क में रहने के कारण आंखों के आस–पास की त्वचा लाल तथा झुलस जाती है जिसे फोटोकिरैटीटीस कहते हैं। मोतियाबिन्द जो कि एक गंभीर समस्या है उनका कारण भी यही होती है जिसकी रोकथाम न करने पर स्थायी रूप से व्यक्ति अंधा हो जाता है। अल्ट्रवायलेट–बी, त्वचा के प्रतिरोधक तंत्र को कमजोर बना देती है और ज्ञात है कि त्वचा ही सबसे पहले प्रतिकारकों के संपर्क में आती है, ज़ो बाहरी संक्रमण के कारण उत्पन्न होती है। इस प्रकार ये विनाशकारी किरणें विभिन्न बीमारियों का कारण बनती हैं।

ओजोन क्षरण कारक

वर्तमान में 96 ओजोन क्षरण कारकों को मान्टरीयल तरीकों द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है। उनमें से महत्वपूर्ण ओजोन क्षरण कारक निम्न हैं:

हैलो कार्बन:

सीएफसी (क्लोरोफ्लोरो कार्बन) की खोज 1828 में हुई थी और इसे अद्भुत गैस कहा जाता था क्योंकि यह काफी समय तक रहने वाली, जहरीली नहीं होती है। ये नान–कारोसिव, और अज्वलनशील बहुमुखी गैस है। 1960 से अब तक इसका उपयोग रेफ्रीजरेटर, एयर कंडीशनर स्प्रे–कैन, फोम और कई दूसरे क्षेत्रों में होता है। सीएफसी टूटने के लिए 50 से 1700 वर्ष लगते हैं, जबकि हैलोजन्स की उम्र लगभग 42 साल है।

कार्बन ट्रेटा क्लोराइडः

इसका उपयोग विलायक के रूप में करते हैं और इसके विघटन की आयु 42 साल है।

मिथाइल कार्बनः

इसे भी विलायक के रूप में उपयोग करते हैं और यह टूटने के लिए 5.4 वर्ष लेती है।

हाइड्रोबोमोफ्लोरोकार्बन्सः

इसका उपयोग पहले ओजोन क्षरण कारकों को रोकने में किया गया था परन्तु इसका प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है।

हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन्सः

इसे सबसे पहले सीएफसी के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। यह सीएफसी से कम हानिकारक होता है परन्तु फिर भी यह ओजोन क्षरण कारक के रूप में कार्य करता है। वायुमंडल में इनकी आयु 1.4 से 19.5 वर्ष तक है।

मिथाइल ब्रोमाइडः

इनकी ज्यादातर खपत दुनिया भर के तकनीकी देशों में इनकी मात्रा 70,000 टन है और जो कि इसके टूटने की अवधि लगभग 7 वर्ष होती है। कुछ ग्रीन हाउस गैसें भी इसके क्षरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वायुमंडल में नाइट्रोजन की भागीदारी लगभग 79%, ऑक्सीजन लगभग 20%, कार्बन डाई–ऑक्साइड 3% तथा अन्य गैसे हैं। औद्योगीकरण, वाहन, प्रदूषण तथा अन्य कारणों से कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ रही है। जापान सरकार की एक रिर्पोट के अनुसार अमेरिका सर्वाधिक 22.2%, चीन 14%, रूस 6.6%, जापान 4.9%, भारत 4.2%, जर्मनी 3.6%, इंग्लैण्ड 2.3% तथा अन्य राष्ट्र 42.6% कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं। इसके अतिरिक्त मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन प्रमुख तौर पर ग्रीन हाउस गैसों के नाम से जानी जाती हैं। इन ग्रीन हाउस गैसों की वायुमण्डल में सांद्रता बढ़ने पर एक आवरण का निर्माण हो जाता है जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो जाती है। वायुमण्डल में मीथेन 1%, नाइट्रस ऑक्साइड 0.25% तथा क्लोरोफ्लोरो कार्बन 50% वृद्धि की दर प्रति वर्ष आंकी गयी है।

ओजोन परत के क्षरण को रोकने वाले कारकः

कई विकासशील देशों जैसे चीन, भारत, ब्राजील आदि ने ऐसे उत्पादनों का निर्माण किया है जो कि ओजोन परत की रक्षा करने में सहायक होते हैं। सीएफसी के विकल्प के रूप में एचएफसी 134ए, हाइड्रोकार्बन्स, एचएफसी ब्लेण्ड्स, एचसीएफसी 22 और अमोनिया का उपयोग विकल्प के रूप में रेफ्रीजरेशन एवं वातानुकूलित इकाईयों में किया जाता है। एचएफसी, डाई मिथाइल ईथर और पर फ्लोरलईथर, ओजोन के लिए लाभदायक होते हैं। कुछ उत्पादन जैसे मैन्यूल पम्प, स्प्रेयर और सूखे पाउडर इन्हेलर इत्यादि हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि, अपनी धरती को बचाओं, अपने आप को बचाओं या ओजोन की परतों को बचाओं।

वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को जाना कि यदि ओजोन क्षरण कारकों को हटा दिया जाये तो हो सकता है कि ओजोन परत रक्षा की संभावना फिर बन जाये। इसलिए जनसामान्य तक इनकी महत्ता एवं जानकारी पहुंचायी जानी चाहिए जिससे हम इस जीवनदायी परत की रक्षा कर मानव एवं अन्य जीवित जीवधारियों का कल्याण कर सकें।

सारणीः– प्रदूषक तत्व एवं प्रभाव

पारा (Mercury)	लकवा, मानसिक पंगुता, सुनने में कठिनाई, जीभ मोटी–मोटी सी लगती है।
सीसा (Lead)	हड्डियों में कैल्शियम का व्यवधान करता है, किडनी और मस्तिष्क की कोशिका प्रभावित होती है।
कैडमियम (Cadmium)	फेफड़े और यकृत का कैंसर होता है, हायएरटेंशन
आर्सेनिक (Arsenic)	यकृत, त्वचा एवं पेट के रोग
फ्लोराइड (Fluoride)	फ्लुओरोसिस की बीमारी
क्रोमियम (Chromium)	कैंसर होने की संभावना
बेरियम (Barium)	हृदय रोग, तंत्रिका तंत्र पर घातक प्रभाव
सिल्वर (Silver)	त्वचा एवं आंख के रोग
आयरन (Iron)	रंग और स्वाद खराब करता है।
क्लोरीन और क्लोराइड (Chlorine)	कैंसर उत्पन्न करने में सहायक
नाइट्रोजन	सूक्ष्मजीव विघटित होते हैं और ऑक्सीजन की कमी उत्पन्न करते हैं।
रासायनिक उर्वरक	मछली, जलचरों का विनाश, सुपोषण, जैविक सांद्रण
रेडियोधर्मिता के कारण	त्वचा संबंधी दीर्घकालिक बीमारियाँ
अम्लीय वर्षा	जलीय जीव जंतु एवं प्राणियों पर दुष्प्रभाव
ताप बिजलीघर अवशिष्ट	जलीय तापमान में वृद्धि से जलीय जीवों की मेटाबोलिक क्रियाएँ तेज हो जाती हैं तथा जीवन काल कम हो जाता है।
वाहित मल	जलीय रोग, जैसे हैजा, टाइफाइड, पेचिश आदि।
जैविक संदूषण	अनेक रोग
कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी	शारीरिक विकृतियाँ, हारमोन का असंतुलन, रिएक्शन समय में कमी आदि।
अमोनियम सल्फाइड	जलीय जीव–जंतु पर हानिकारक प्रभाव
प्रदूषित जल में नहाने से	वाईल रोग (Weil Disease) तथा सिस्मोटोप बीमारी हो जाती है।

फसल पर प्रभाव

खाद्य सुरक्षा के लिये देष में गेहूँ का विशेष महत्व है परन्तु तापमान में औसत वृद्धि से खासकर गेहूँ की बुआई के समय (अक्टूबर–नवंबर) तथा पराग निकलने एवं दाना भराई आदि के समय (फरवरी के अन्तिम सप्ताह से अप्रैल के समय तक) तापमान में बढ़ोतरी से गेहूं के उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है तथा आने वाले समय में इस समस्या के और गहराने की संभावना प्रबल है। बदलती जलवायु से भारतीय कृषि एवं उसके तापमान पर लगभग 20 प्रतिशत तक की कमी की आशंका है। इसके अलावा जौ, चना, गन्ना, मूंग, उडद, सरसों, बाजरा, धान, अरहर, ज्वार, सोयाबीन, मटर, सब्जियों तथा फल–फूल की खेती पर भी मौसम की मार स्पष्ट रूप से दिखाई देनी लगी है। मौसम में हो रहे बदलाव के कारण फसल सुरक्षा का खतरा हो गया है। इसलिये मौसम के बदलावों के निदान के लिये फसल प्रणाली, बीज की किस्मों के चयन उचित समय पर बुवाई एवं उपयोगी प्रबंधन अपनाकर किसान उत्पादन क्षति को कम कर सकते हैं। फसल उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के खतरे को कम करने के लिये मौसम पूर्वानुमान और इनके अनुप्रयोगों की क्षमता को विशेषतौर पर फसल प्रबंधन एवं जीवनाशक पूर्वानुमान की दिशा में बेहतर करना होगा।

जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होते वृक्ष

जलवायु परिवर्तन से बंजर होती भूमि

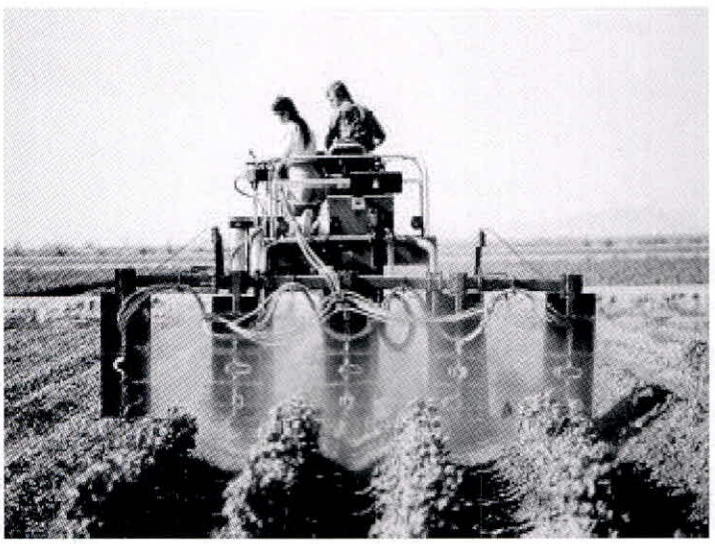

रासायनिक छिड़काव के कारण प्रभावित होती फसल

सारणीः– विभिन्न प्रकार की मृदा

क्र.सं.	कण का प्रकार	आकार (मिमी.) में
1.	मृत्रिका (Clay)	0.002 से कम
2.	गाद (Silt)	0.002–0.02
3.	महीन रेत (Fine Sand)	0.02–0.2
4.	मोटी रेत (Coarse Sand)	0.20–2.0
5.	पत्थर और बजरी (Gravel)	2.0 से अधिक

समाधान

नवीनतम तकनीकों जैसे जी.पी.एम. जिसमें जलवायु और जगह एवं स्थान का खेती में विशेष ध्यान रखा जाता है। रिमोट सेसिंग पर आधारित जी.आई.एस. तकनीक जिसके माध्यम से मृदा भूदशा जीव जलवायु एवं एस.जी.सी. (लैथ आफ ग्रोविंग पीरियड ऑफ क्रॉप) आदि अन्य बातों का समावेश कर वृहद मानचित्र एवं नक्शे तैयार किये जाने चाहिये जिससे भूजल की उपलब्धता आदि की जानकारी किसानों को दी जा सके। इसके अलावा स्थान, विशेष एवं फसल विशेष पर आधारित तकनीकी जानकारियों का समन्वयन व उनकी सरल एवं स्पष्ट भाषा में उचित व्याख्या करके किसानों को दी जानी आवश्यक है। इसके साथ–साथ उपलब्ध जनन द्रव्यों में से जीनों का समावेश करके अगर तापरोधी में से जीनों का समावेश करके अगर तापरोधी किस्मों का विकास किया जाये तो जलवायु के परिवर्तन का असर उत्पादन पर काफी हद तक कम किया जा सकता है।

सन्दर्भ

अशोकराज, एन. (2001), माइक्रो इरीगेशन – नीड ऑफ द 21 सेन्चुरी फॉर कंजर्विंग इण्डियाज वॉटर रिसोर्सेज इन माइक्रो इरीगेशन, सी. बी. आई. पी. पब्लिकेशन नम्बर – 282, पी.पी. 52–62।

अनाम (2000), सेन्ट्रली स्पॉन्सर्ड स्कीम ऑन डेवलपमेंट ऑफ हॉर्टीकल्चर थ्रू प्लास्टिकल्चर इन्टरवेंशन, मिनिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर, डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर एण्ड कोऑपरेशन, नई दिल्ली, 44 पी.।

जैन इरीगेशन (2000), प्रोडक्ट कैटालोग, वर्किंग फार एग्रीकल्चर, जैन इरीगेशन सिस्टम लि., जलगांव, महाराष्ट्र, इण्डिया, 71 पी.।

तोमर, ए.एस. चौहान, एच.एस. और सिंह, के.के. (2001), इफेक्ट ऑफ डिफ्रेंट इरीगेशन मैथड्स आन वेजिटेटिव ग्रोथ, वॉटर सेविंग एण्ड वॉटर यूज एफीसिंयसी ऑफ फ्रेंच बीन. जनरल ऑफ इण्डियन वॉटर रिसोर्सेज सोसाइटी, खंड 21, अंक 3, पी.पी. 146–148।

बैंक्स डी.ए. नाकायामा, एफ.एस. और वारिक, ए. डब्लू (1982), प्रिंसिपल प्रैक्टिस एण्ड पोटेन्सिएल्टीज ऑफ टीकल (ड्रिप) इरीगेशन, एडव इरीगेशन नं. 1, पी.पी. 219–297।

यादव, बी.आर. और राजपूत, टी.बी.एस. (2000), जल की प्रतिकूल परिस्थितियों में ड्रिप सिंचाई की उपयोगिता, भारतीय कृषि में अनुसंधान क्रान्तियां, सी.एस.एस.आर.आई. करनाल, 281 पी।

राजपूत टी.बी.एस. और पटेल, नीलम (2001), ड्रिप इरीगेशन मैनुअल, जल प्रौद्योगिक केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, 56 पी.।

रेड्डी, के.एस. और राजपूत, टी.बी.एस. (2000), मैन्यूफैक्चरिंग एण्ड हाइड्रोलिक वैरीएशन इन ट्रीकल इरीगेशन सिस्टम जरनल ऑफ स्वायल एण्ड वॉटर कंजरवेशन, खंड 44, अंक 3 एण्ड 4, पी.पी. 150–156।

बार यूसुफ, बी. (1977), ट्रीकल इरीगेशन एण्ड फर्टिलाइजर ऑफ टोमेटोज़ इन सैण्ड डयून्स। वॉटर, न एण्ड पी डिस्ट्रीब्यूशन इन द स्वायल एण्ड अपटेक बाय प्लांट, एग्रोनॉमी जे. 69 पी.पी. 486–489।

सिंह, एच.पी. (2001), इमर्जिंग सिनैरियो ऑफ माइक्रो इरीगेशन इन इण्डिया, इन माइक्रो इरीगेशन, सी.बी.आई.पी. पब्लिकेशन नम्बर– 282, पी.पी. 18–29।

सेंगर आर.एस., चौधरी रेशू एवं कुमार अशोक (2011) जलवायु परिवर्तन एवं प्रभावित होती कृषि उत्पादकता। मौसम और जलवायु का कृषि पर प्रभाव, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, पेज नं0 71–100।